© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

नवजागरण युगीन हिन्दी साहित्य में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति

इन्दुबाला यदुवंशी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
श्री गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मालटारी,आजमगढ़,
सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश।

सारांश– नवजागरण युगीन हिंदी साहित्य स्त्री समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरकर सामने आयी हैं। नवजागरण काल एक तरह से विचारों का संक्रमण काल है। जहाँ आधुनिक और पुरातन विचार एक साथ उपस्थित हैं, इसलिए ज्यादातर साहित्यकारों का स्वर परिवर्तनगामी न होकर व्यवस्था में सुधारवादी दिखाई पड़ता है। कुछेक स्त्री स्वर जरूर प्रमुख रूप से परिवर्तनगामी दृष्टि लिए हुए दिखाई देते हैं लेकिन उन्हें उस तरह साहित्य में स्थान नहीं मिला जैसा कि उन्हें मिलना चाहिए।

मुख्यशब्द– नवजागरण, युगीन, हिंदी, साहित्य, स्त्री, आधुनिक, पुरातन।

नवजागरण का अर्थ नवीन चेतना से है। विश्व भर में नवजागरण अलग–अलग समय में फैला। भारत में नवजागरण का उदय अठारहवीं शताब्दी में सर्वप्रथम बंगाल में हुआ और वहीं से पूरे भारत में धीरे–धीरे फैला। उत्तर भारत में यह 19वीं शताब्दी में फैला। बंगाल में नवजागरण के अग्रदूत राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि थे। राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर उसके माध्यम से स्त्री शिक्षा, नए ज्ञान विज्ञान व समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। राय के प्रयासों से सर्वप्रथम बंगाल में सती प्रथा का विरोध हुआ। राय ने इस कुरीतियों के खिलाफ तार्किक आधार पर सती प्रथा के विरूद्ध कई लेख लिखे जिसके चलते सन् 1829 में विलियम बैंटिक ने कानून बनाकर सती प्रथा पर रोक लगायी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्त्री विधवा विवाह व शिक्षा को पुरजोर समर्थन किया। वे संस्कृत के अध्यापक थे। उन्होंने प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति पर तार्किकता शैली में लेखा लिखे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयासों से ही सन् 1856 में 'हिन्दू विधवा विवाह एक्ट' पास हुआ। बंगाल से उत्तर महाराष्ट्र में भी स्त्री शिक्षा व सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया जा रहा था। इसमें ज्योतिबा फूले, फातिमा शेख आदि का नाम प्रमुख है। ज्योतिबा फूले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की व स्त्रियों के लिये

स्कूल खोले। दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की व भारतीय समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। इन क्षेत्रों में हो रहे आंदोलनों का प्रभाव हिन्दी पट्टी पर पड़ा। स्वयं हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत कहे जाने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बंगाल के आंदोलन से प्रभावित थे।

भारतेन्दु युग हिन्दी नवजागरण का आरम्भिक दौर है और इसके प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व उनके मंडली के साहित्यकारों ने उस समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्थिति को केन्द्र में रखकर साहित्य की रचना की। इन साहित्यिकारों ने साहित्य को जो रीतिकालीन दौर में राजदरबारों में सीमित हो गया था, जिसका मुख्य ध्येय राजप्रशस्ति व श्रृंगारिकता हो गया था, को बाहर निकालकर जन सरोकार के मुद्दों से जोड़ा। कुंवर पाल सिंह ने लिखा है कि– ''हिंदी नवजागरण में आर्थिक जीवन में विदेशों में धन का जाना, महँगाई, अकाल, टैक्सों से देश की दुर्दशा, धार्मिक क्षेत्र में मत–मतान्तर के झगड़े और धार्मिक अंधविश्वास और रूढ़ियां, सामाजिक क्षेत्र में जाति–पाँति के टंटे, खान–पान के पचड़े, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, स्त्री शिक्षा, विदेशी गमन तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध तथा राजनीतिक क्षेत्र में अंग्रेजों के असली चरित्र का खुलासा, स्वदेशी तथा देश भक्ति की गूँज को इस युग के लेखकों ने अपनी लेखनी से चित्रित किया।''[1]

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्त्रियों की स्थिति को सुधारने को लेकर हिंदी क्षेत्रों में काफी प्रयास किये गए। मीराबाई के पदों को छोड़कर मध्यकालीन साहित्य में स्त्री अस्मिता को लेकर एक चुप्पी व्याप्त है। उसमें स्त्री की मर्यादा और नैतिकता की बात तो है पर स्त्रियों की समस्या सिरे से नदारद है। उत्तर मध्यकाल जिसे रीतिकाल कहते हैं में स्त्री को एक भोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 19वीं शताब्दी का हिंदी नवजागरण सिर्फ राष्ट्रवादी आंदोलन व हिन्दी भाषा के विकास का आंदोलन नहीं था वह व्यापक रूप से स्त्री की दशा को सुधारने व सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का भी आंदोलन था।

इस समय स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब थी। भारतीय समाज में अनेक कुरीतियाँ सती प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह के प्रति हेय दृष्टिकोण आदि समस्याएं मौजूद थी। भारतेन्दु युग के लेखकों ने इन समस्याओं को अपने साहित्य में उठाया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक युग के प्रणेता हैं। उन्होंने अपनी अल्पआयु में कई नाटकों निबंधों, यात्रावृतांतों की रचना की तथा कई नाटकों का अनुवाद व उनका मंचन किया। भारतेन्दु ने 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' व 'बालाबोधिनी' पत्रिका का सम्पादन किया। इसमें समय–समय पर स्त्रियों की शिक्षा के समर्थन में तथा सामाजिक कुरीतियों व अंग्रेजी नीतियों का तर्क पूर्ण विरोध प्रस्तुत होता था। बाला बोधिनी स्त्रियों की शिक्षा सामग्री की केन्द्रित पत्रिका थी, जिसमें स्त्रियों के लिए तमाम दोहे, मुकरिया पद निबंध आदि प्रकाशित होते थे। इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर निम्न दोहे छपते थे।

''जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष, या में कुछ न विभक्ति।।
सीता अनुसूया सती, अरून्धती अनुहारि।

शील लाज विद्यादि गुण, लहौ सकल जग नारि।।
पितु पति सुत कतल कमल, ललित ललना लोग।
पढ़ैं गुनैं सीखैं सुनैं, नासैं सब जग सोग।।
वीर प्रसविनी बुध बधू, होई हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की सोचेहि स्वामिनी होय।।[2]

भारतेन्दु के समय में पत्रिका का इस तरह का मोटो छपना अपने आप में एक क्रांति का कदम था। 'जो नारी सोई पुरुष' पंक्ति भारतेन्दु के स्त्री विषयक प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है।

भारतेन्दु ने अपने मुकरियों, निबंधों व गीतों में विधवा विवाह का पुरजोर समर्थन व बाल विवाह का विरोध किया है। उनके मुकरियों, नाटकों निबंधों में पितृसत्तात्मक मूल्यों का खंडन व सामाजिक कुरीतियों का विरोध प्रस्तुत है। भारतेन्दु ने स्त्री मुद्दों को संवेदनशीलता से उठाने वाले तमाम नवजागरण के अग्रदूतों ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती आदि पर मुकरिया लिखी है।

विधवा विवाह के प्रबल समर्थक ईश्वर चंद्र विद्यासागर पर उन्होंने लिखा है कि–

''सुन्दर बानी कहि समुझावै।
विधवागन सों नेह बढ़ावै।
दयानिधान परम गुन–आगर।
सखि सज्जन नहिं विद्यासागर।।[3]

भारतेन्दु ने अपने व्यंग 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' में दयानन्द सरस्वती व केशवचन्द्र सेन की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि– ''हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरच उसमें सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया। जिस चंडाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती है, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों की बाल हत्या होती है, उस पापमयी परम नृसंश रीति को इन लोगों ने उठा देने में अपने शक्यभर परिश्रम किया। जन्मपत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री–पुरुष जीयें, एक तीर घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विषयी हो जायँ, परस्पर नित्य कलह हो, शांति स्वप्न में भी न मिलै, वंश न चलै, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गये। विधवा गर्भ गिरावै, पंडित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, वरंच चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य छिपावेंगे, अंततोगत्वा निकल ही जायँ तो संतोष करेंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसंदेह दूर करना चाहा। सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अथवा वरंच नपुंसक मिले तथा वर को काली कर्कशा कन्या मिले जिसके आगे बहुत बुरे परिणाम हो, इस दुराग्रह को इन लोगों ने दूर किया। चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हो कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं, पंडित जी हैं, इनका दोष मत कहो, कहोगे तो पतित होंगे, इनको दो, इनको राजी रक्खो, इन सत्यानाश संस्कार को इन्होंने दूर किया।''[4]

भारतेन्दु ने स्त्रियों व भारत की दयनीय दशा का कारण पितृसत्तात्मक सामंती मानसिकता व ब्राह्मण पुरोहितवाद में देखा। शुद्ध वैष्णव होने के बावजूद उन्होंने पण्डा पुरोहितवाद का विरोध किया। व धम्र के नाम पर फैली कुरीतियों को प्रश्नांकित किया। भारत में फैली जाति व्यवस्था के ऊँच–नीच, खान–पान संबंधी रोक–टोक, बाल विवाह की स्वीकृत, विधवा विवाह का विरोध और उसके बाद बढ़ने वाले व्यभिचार जैसे कुरीतियों को तथा इन कुरीतियों को ईश्वर के मत्थे मढ़ देना को भारत की दयनीय स्थिति का प्रमुख कारण माना। उन्होंने अपने नाटक भारत दुर्दशा में लिखा है कि–

''रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए।।
जाति अनेकन करी नीच अरू ऊँच बनायो।
खान पान सम्बन्ध सबन सो बरजि छुड़ायो।।
जन्मपत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब।
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो।
विधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारयो।।
रोकि बिलायत गमन कूप मंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाए प्रचार घटायो।।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सो सब बिमुख किए हिन्दू घबराई।।''[5]

नवजागरण कालीन अनेक लेखकों व सुधारकों की तरह भारतेन्दु ने भी स्त्री–पुरुष संबंध में समानता की बात की, स्त्रियों की आजादी के सवाल को अपने नाटकों निबंधों में पुरजोर तरीके से उठाया है। भारतेन्दु यूरोपीय स्त्रियों की आजादी से प्रभावित थे और चाहते थे कि भारतीय स्त्रियां भी उसी तरह आजाद हों लेकिन उनका मानना था कि भारतीय स्त्रियों को पूरी तरह यूरोपियन स्त्रियों की नकल नहीं करनी चाहिए। उन्होंने अपने नाटक 'नील देवी' में लिखा है कि– ''जब मुझे अंग्रेजी रमणी लोग मेदसिंचित केश राशि, कृतृम कुन्तजलूट, मिथ्या रत्नाभरण और विविध वर्ण वसन से भूषित क्षीण कटिदेश कसे, निज–निज पति गण के साथ प्रसन्न बदन इधर से उधर फर–फर कठ की पुतली की भाँति फिरती हुई दिखलाई पड़ती है तब इस देश की सीधी–सादी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुख का कारण होती हैं। इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गौरांगी युवती समूह की भाँति हमारी कुललक्ष्मी गणा भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के

साथ घूमैं; किन्तु और बातों में जिस भांति अंग्रेजी स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी–लिखी होती हैं, घर का काम–काज संभालती हैं, अपने संतानगण को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पति–विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं, और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ ग्रह दास्य और कलह ही में नहीं खोती उसी भांति हमारी गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है।''[6]

भारतेन्दु के यहाँ आधुनिकता व पुरातनता का द्वंद्व है, जो उनके लेखन में जगह–जगह दिखाई देता है। तमाम आलोचकों ने उन पर आरोप लगाया है कि भारतेन्दु की स्त्री विषयक दृष्टि परम्परागत है। यह सही है कि भारतेन्दु सावित्री बाई फूले, प. रमाबाई, ताराबाई शिन्दे, सीमान्तनी उपदेश की लेखिका अज्ञात हिन्दू महिला आदि की तरह स्त्री मुद्दों को लेकर मुखर नहीं दिखाई देते, लेकिन इसके बावजूद पुरोहित–पंडवाद का विरोध व स्त्री शिक्षा का पुरजोर समर्थन करते हैं।

भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों में बालकृष्ण भट्ट का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भट्ट जी मूलतः एक संपादक और निबंधकार थे। उन्होंने सैकड़ों निबंधों की रचना तथा निरंतर तैंतीस वर्षों तक 'हिन्दी प्रदीप–पत्रिका का संपादन किया। भट्ट जी ने अपने निबंधों में स्त्री–शिक्षा, सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात, विधवा विवाह, बाल विवाह का विरोध व स्त्री उत्थान जैसे विषयों पर प्रमुखता से लिखा। स्त्री जीवन की समस्याओं पर इनके केन्द्रित निबंध निम्न हैं– 'बाल विवाह', 'गर्भाधान और दाम्पत्य', 'स्त्रियां', 'सुगृहणी', 'स्त्रियां और उनकी शिक्षा', 'क्या वेश्या' शहर की आबादी का एक हिस्सा नहीं है 'बाल्य विवाह भयंकर विपत्ति से क्योंकर छुटकारा पावें', 'हमारी ललनाओं की शोभनीय दशा', 'स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा विशेष प्रशंसनीय हैं', 'मिस्टर मालवारी के विचार की पोषकता', 'चलन और गुलामी' आदि।

इन निबंधों में भट्ट जी ने साहस का परिचय दिया है। भारतेन्दु की तरह इनके निबंधों में राजभक्ति नहीं मिलती है, बल्कि भट्टे जी ने अपने साहित्य में अपने समाज और राजनीति की कटु आलोचना प्रस्तुत की है। रामविलास शर्मा ने उनके इस महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि– ''विचारों की उदारता में वह युग के साथ थे, कहीं–कहीं उससे आगे भी थे। समाज और साहित्य के विकास के बारे में उनकी धारणाएँ उनकी अपनी थीं, आज भी व्यापक रूप से वे समाज द्वारा नहीं अपनायी गयी।... धर्म और दर्शन को सामाजिक विकास की कसौटी पर कसकर बालकृष्ण भट्ट ने प्रगतिशील आलोचना की नींव डाली थी।... धर्म दर्शन, इतिहास, साहित्य आदि के प्रति भट्ट जी के विचारों को देखते हुए कह सकते हैं कि वह अपने युग के सबसे महान विचारक थे।''[7]

बालकृष्ण भट्ट जी स्त्री शिक्षा के हिमायती थे, उनका मानना था कि जब तक स्त्रियाँ खुद पढ़–लिखकर आगे नहीं आती तब तक स्त्रियों की दशा में काई परिवर्तन नहीं होगा। वह शिक्षा को स्त्री मुक्ति का साधन मानते थे। उन्होंने अपने लेखन में स्त्री शिक्षा विरोधियों की कटु आलोचना की हैं

उनके निबंधों में स्त्री शोषण में सहायक धर्म सत्ता और पितृसत्ता के गठजोड़ व उनके पाखंडी चरित्र को उजागर किया गया है। वह अपने निबंध नए देवस्थानों में नए–नए पुजारी भी बढ़ने चाहिए में लिखा है कि– ''अब

हिन्दुस्तान के वे दिन दूर गए जब मूर्ख ब्राह्मण पंडा पुरोहित जो कुछ कह देते थे वही ब्रह्म की लीक समझा जाता था।... अब रही स्त्रियां जिनका हमारे पूज्य पाद महाराजाओं को बड़ा अभिमान है कि बला से बाबू साहब के ख्याल बदल गए तो क्या परवाह है उनके घर की अनपढ़ स्त्रियाँ तो हमारे चंगुल में हैं सो उधर भी सब सामान इनकी उस्तादी खुल जाने का हो रहा हैं यह स्त्री शिक्षा और स्त्रियों की दशा के परिवर्तन की चेष्टा इत्यादि आन्दोलन के माने क्या? इसके यही तात्पर्य है कि शिक्षा आदि के द्वारा उनके नेत्र खोल दिए जाएं जिसमें ये भी हमारे समान गुरुओं की चालाकी समझने लगे। निश्च ही मानिए जिस दिन हमारी सीधी–सादी ललना समाज में शिक्षा का असर पेदा हो गया, जैसा बंगाल में हो चला है, उस दिन फर ये मंदिर और देवस्थान हिन्दुस्तान की एक पुरानी बात मात्र रह जाएगी। उनकी ओर जैसा मजहबी जोश इस समय देखा जाता है वह बिलकुल गायब हो जाएगा।''[8]

बालकृष्ण भट्ट स्त्रियों के लिए आधुनिक शिक्षा अनिवार्य मानते थे। उनका कहना था कि जब स्त्रियां आधुनिक ज्ञान–विज्ञान से युक्त शिक्षा से सम्पन्न होंगी तो स्वयं ही पाखण्ड, सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों आदि से छुटकारा पा जायेंगी। उन्होंने पढ़ी लिखी स्त्रियां पथभ्रष्ट हो जाती हैं जैसी धारणा पर कुठाराघात किया और बताया कि पढ़–लिखकर वे स्त्रियाँ पथभ्रष्ट नहीं बल्कि पुरुषों की सहायक सिद्ध होंगी। उनके पढ़ने लिखने से स्त्रियों की स्थिति सुधरेगी। साथ ही देश का भी विकास होगा। उन्होंने लिखा है कि– ''वे समझते हैं कि पढ़–लिखकर स्त्रियाँ पराधीन नहीं रहना चाहेंगी, वे हमारी बराबरी करने लगेंगी या फिर कुमार्गगामी हो जायेंगी।.... शिक्षा तो मनुष्य की आंखें खोल देती है, विवेक अज्ञान का परदा उठा देती है, उसे अच्छे और बुरे का ज्ञान करा देती है इसलिए यह आशंका कि पढ़–लिखकर महिलाएं पदभ्रष्ट हो जायेंगी बिल्कुल निर्मूल और निराधार है। पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ तो पुरुषों की सहायक सिद्ध होंगी। इसलिए स्त्रियों की शिक्षा का अन्ध विरोध छोड़कर पुरुषों को विवेक से काम लेना चाहिए और स्त्री शिक्षा का समर्थन करना चाहिए।''[9] भट्ट जी ने हर तरह की धर्मान्धता, पिछड़ापन, कट्रपन तथा संकीर्ण व दोहरी मानसिकता का जमकर विरोध किया। उन्होंने दोहरे चरित्र वाले लोगों की कटु आलोचना की व कथन और करनी को एक करने पर जोर दिया। आज भी लोगों के व्यवहार और कार्य में बहुत अंतर है। लोग स्त्री मुक्ति पर लम्बे–लम्बे भाषण तो देते हैं लेकिन असल में जब निजी जीवन में ऐसा कुछ कार्य करना पड़ता है तो अपने ही सिद्धांतों से पीछे हट जाते हैं। भट्ट जी के समय भी ऐसे लोग थे और इस तरह की समस्या बरकरार थी। उनकी आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है कि– ''अपने देश के रीति और बर्ताव में स्त्रियों पर अत्याचार की आप बाहर बड़ी निन्दा करते हैं, पर घर में जेसा बर्ताव आपका उनके साथ है उसे जौ मात्र भी नहीं बदलते। बाहर आप परदानशीनी के बड़े भारी दुश्मन हैं पर अपने घर की स्त्रियों को जरा भी काबू के बाहर निकलने दें यह कभी न होगा। अपनी स्त्रियों की मंदबुद्धि पर आप बाहर बहुत झीखते हैं पर स्वयं यही नहीं सोचते हैं कि कैसे इस लाकय हुए जो दूसरों का ऐब समझने लगे। क्या खाली स्त्री की जाति में जन्म पाने से बलबुद्धि में भी भेद आ जाता है? कदापि नहीं। आपने खुद ऊँचे दर्जे की शिक्षा पाई है तब इस योग्य हुए कि दूसरों की न्यूनता समझें तब फिर वही शिक्षा फैलाने का प्रयत्न आप उनमें भी क्यों नहीं करते।''[10]

भारत में पितृसत्ता की जड़े बहुत गहरी हैं। पुराणों शास्त्रों वेदों और संहिताओं द्वारा मर्यादा और नैतिकता के नाम पर स्त्री को ऐसे जकड़ दिया गया है कि उसके विरूद्ध जाने पर वह खुद ही ग्लानि महसूस करती है। इसलिए वह स्त्री को धर्मशाला और बेकार की पुस्तकों को पढ़ाने के विरोधी थे। धर्म के नाम पर तमाम पिछड़ापन और कट्टरता थोपे जाने के वे खिलाफ थे तथा इन धर्म के ठेकेदारों को क्रूर ओर कुटिल बुद्धि वाला व्यक्ति मानते थे उन्होंने धर्म शास्त्रों और धर्म के ठेकेदारों की कटु आलोचना करते हुए अपने 'स्त्रियां' नामक निबंध में लिखा है कि– ''हमारे यहां के ग्रंथकार और धर्मशास्त्र गढ़ने वालों को कुंठित बुद्धि में न जाने क्यों यही समाया हुआ था कि स्त्रियां केवल दोष की खान हैं गुण इनमें कुछ हई नहीं।

इसी से चुन–चुन उन्हें जहाँ तक ढूंढे मिला केवल दोष ही दोष इनके लिखे गए और जहाँ तक इनके हक में बुराई और अत्याचार करते बना अपने भरसक न चूके और उन्हें हर तरह पर घटाया। कानून में इनका सब तरह का हक मार दिया, धर्म संबंध में इन्हें प्रधान न रखा, दरजे में इन्हें और महाजघन्य शूद्रों को एक ही माना और किसकी कहैं मनु जिसके समान चोखा और हर एक समय बरतने के पक्षपात–विहीन, शास्त्र–प्रणेताओं में किसी दूसरे का धर्मशास्त्र ऐसा नहीं है उन्होंने शूद्र और स्त्रियों की सब तरह पर रेढ मारी है।''[11]

सन् 1856 में हिन्दू विधवा अधिनियम पारित हो जाने के बाद भी विधवाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। समाज में परम्परागत सोच रखने वाले लोगों का बोल–बाला था। बाल विवाह व अनमेल विवाह के कारण विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। विधवाओं को अशुभ माना जाता था व सार्वजनिक जगहों पर उनका जाना वर्जित था। नवजागरण कालीन तमाम संगठनों ने प्रमुख रूप से विधवा विवाह के समर्थक में तथा बाल विवाह के विरोध को अपना प्रमुख मुद्दा बनाया था।

बालकृष्ण भट्ट ने भी स्त्रियों की आवाज को अपनी कविताओं में जगह दी। उन्होंने विधवाओं की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए लिखा है कि–

''हम विधवा दुखियारी सुनो कोउ टेर हमारी।

जलत रहीं जीवन जो पिय संग–सो हम भारत नारी।

बाल वयस पति मरन विपत्ति अति–समझ–समझ दुख भारी।

हाय विरहानल जारी।।

काम विधा सो कोऊ बच्यो नहिं–जोगी जती ब्रतधारी।

हम अबला तब क्योंकर उबरैं–बालक निपट अनारी।।

तलफ मरती बिन मारी।।

लोक लाज कुल कान त्यागि सब जाति की रीति बिसारी।

गर्भपात शिशुवध को पातक–करत करम हत्यारी।।

बढ़ावै कीर्ति तुम्हारी।।''[12]

हिन्दी नवजागरणकालीन साहित्यकारों में प्रतापनारायण मिश्र का नाम महत्त्वपूर्ण है। प्रताप नारायण मिश्र उन्नाव के रहने वाले थे और उन्होंने अपनी कर्मभूमि कानपुर में बनायी। कानपुर से वे 'ब्राह्मण' पत्रिका का सम्पादन करते थे। प्रताप नारायण मिश्र जी की कविताओं, संपादकीयों और निबंधों में नवजागरण कालीन चिंताएँ व्यापक रूप से दिखाई देती है। प्रताप नारायण मिश्र ने सामाजिक सुधार के मुद्दों को व्यापक रूप से उठाया। उन्होंने बाल विवाह का विरोध अमनेल विवाह का विरोध व स्त्री शिक्षा का जमकर समर्थन किया। उनका मानना था कि पढ़–लिखकर स्त्रियाँ देश व समाज का समुचित विकास कर सकती हैं। स्त्रियों के लिए शिक्षा की समुंचित व्यवस्था न होने के कारण वह रोष प्रकट करते हुए अपने 'स्त्री' नामक निबंध में लिखते हैं कि– ''पुरुषों के लिए सब कहीं पाठशाला, इनके लिए यदि है भी तो न होने के बराबर।''[13]

प्रताप नारायण मिश्र स्त्री पुरुष को एक समान मानते थे। उनका मानना था कि स्त्री पुरुष एक गाड़ी के दो पहिए हैं अगर उनमें से एक भी पहिया कमजोर होगा तो गाड़ी का चलना मुश्किल होगा। इसलिए जब तक स्त्रियों को समान अधिकार नहीं मिलेगा तब तक देश की दशा सुधारने वाली नहीं है। उन्होंने लिखा है कि जिसमें– ''स्त्रियाँ विशेषतः पतिव्रता हों और पुरुष एक स्त्री व्रत हो, उस देश की उन्नति में क्या बाधा हो सकती है। जिस गाड़ी के दोनो पहिए दृढ़ हों, उसके चलने में भी कोई अड़चन है?''[14]

प्रताप नारायण मिश्र जी के समय बाल, विवाह समाज की प्रमुख समस्या थी। जिसके चलते स्त्रियों को अन्य समस्याओं का सामना करना पड़ता था। कम उम्र में विवाह और अनमेल विवाह के चलते समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ गयी थी। मिश्र जी बाल विवाह का पुरजोर विरोध करते थे उनका मानना था कि अगर बाल विवाह की समस्या से निजात पा लिया गया तो विधवा समस्या से स्वयं ही छुटकारा पाया जा सकता है। मिश्र जी समय–समय पर बाल विवाह व अनमेल विवाह के विरूद्ध अपने सम्पादकियों व निबंधों में लिखते रहते थे। अपने निबंध 'सहवास बिल अवश्य पास होगा' में उन्होंने लिखा कि– ''सैकड़ों मस्तिष्क मान देश भक्त लोग बरसो से चिल्लाते–चिल्लाते थक गए कि अपना भला चाहो तो बाल विवाह की रीति उठाओ, दूध के बच्चों का बलवीर्य मट्टी में न गिलाओ पर किसी के कान में चींवटी न रेंगी।''[15]

बाल विवाह, अनमेल विवाह व बहुविवाह के चलते समाज में व्यापक पैमाने पर विधवा समस्या बनी हुई थी। सन् 1829 में राजा राम मोहन राय के प्रयासों व बिलियम बैकट की मदद से सती प्रथा विरोधी कानून लागू हुआ। जिसके चलते विधवाओं की संख्या बढ़ रही थी। इस विधवा समस्या को दूर करने के लिए ईश्वरचंद विद्यासागर ने सन् 1856 में अंग्रेजी सरकार की मदद से विधवा विवाह कानून पास कराया। लेकिन विधवा विवाह कानून बन जाने के उपरान्त भी समाज की जड़ मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा था। विधवाएँ अशुभ मानी जाती थी। किसी भी मंगल कार्य में उनकी उपस्थिति मात्र से उस आयोजन को दूषित माना जाता था। उनके बाल मुडवा दिए जाते थे

तथा समाज व परिवार से अलग रखा जाता था। विधवाओं की इन यातनाओं को देखकर प्रताप नारायण मिश्र ने पुरुष मानसिकता वालों को धिक्कारते हुए लिखा है कि–

''कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपत्त बाल–विधवन की है।

ताते बढ़ि कै, क्रंदना कान्यकुब्ज कन्यन की है।

बैर परे पितु मात बनाई युवती बाल बृद्धन की है।

पशु सम समझी, जाति नहिं बनिता रिषि वंशज की है।

काहे न कलपै नियत खसम पर हा! जेहि भसम रमाई है।''[16]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग के पश्चात् सन् 1900 से सन् 1918 तक के समय को द्विवेदी युग कहते हैं। द्विवेदी युग को नवजागरण सुधारकाल के नाम से भी जाना जाता है। द्विवेदी युग का नामकरण महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर किया गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन के माध्यम से हिंदी का ही नहीं अपितु पाठकों की रूचियों का भी परिष्कार किया। उन्होंने बाल विवाह, अनमेल विवाह विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा जैसी आदि सामाजिक समस्याओं पर मुखरता से लिखा। इस समय समाज में भारतेन्दु युग जैसी चुनौतियां नहीं थी क्योंकि भारतेन्दु युगीन साहित्य ने समाज में गहरा असर डाला था। लेकिन समस्याएँ पूर्णतः समाप्त नहीं हुई थी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी स्त्री शिक्षा पर बहुत जोर दते हैं, उनका मानना था कि अगर स्त्री शिक्षित नहीं होगी तो देश और समाज तरक्की नहीं कर सकता है। उन्होंने स्त्रियों की गुलामी का प्रमुख कारण स्त्री की अशिक्षा को माना है। उन्होंने शिक्षा को सब धनों का मूल धन बताते हुए अपनी कविता 'महिला–परिषद के गीत– में लिखा है कि–

''विद्या धनों का मूल है पर उस तरफ वहन,

अब तक गया नहीं कभी ध्यान हमारा।।

आओ करें प्रयत्न आज से लगा के दिल,

बढ़ जाय जिससे ज्ञान और मान हमारा।।

विद्या बिना स्वदेश की सेवा न हो सके,

विद्या ही से है सब तरह कल्याण हमारा।।''[17]

महावीर प्रसाद द्विवेदी स्त्री शिक्षा को लेकर बहुत जागरूक थे। उनके स्त्री विषयक में निबंधों में स्त्री शिक्षा को लेकर बहुत जोर है। उनके स्त्री विषयक निबंध 'माँ–बाप का कर्तव्य', 'स्त्री शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खण्डन', 'स्त्री शिक्षा की आलोचना', 'स्त्रियों का सामाजिक जीवन', 'स्त्रियाँ और संगीत', 'गुजरातियों में स्त्री शिक्षा', 'जापान में स्त्री शिक्षा' आदि हैं। इन निबंधों में द्विवेदी जी ने स्त्री शिक्षा को रेखांकित किया है।

द्विवेदी जी बाल विवाह के विरोधी थे। वे बीस वर्ष की उम्र के पहले स्त्री विवाह को घातक मानते थे। उन्होंने बाल विवाह के दुष्परिणामों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि– ''कम उम्र की स्त्रियों को यदि प्रसूति होती है तो उनको वेदना भी अधिक सहनी पड़ती है और दुर्घटना का भी अधिक डर रहता है। स्त्रियों की उम्र कोई बीस वर्ष से कम न होने से प्रसूति में विशेष डर नहीं रहता। सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति कम हो जाने पर ही दुर्घटना का डर रहता है।''[18]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी कविताओं में स्त्री की दयनीय दशा का चित्रण किया है। 'कान्यकुब्ज अबला–विलाप' कविता में स्त्री के बाल विवाह से उत्पन्न असहाय दुःख की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि–

''कभी–कभी गुड़िया–सी बचपन ही में ब्याही जाती हैं
जिसके कारण ही अति दुःसह दुःख जन्म भर पाती हैं।
प्यारे पिता, बन्धुवर, तुम कब भला होश में आओगे?
कब हम दुःखी दीन अबलाओं पर तुम दया दिखावोगे।।''[19]

स्त्री के साथ जन्म से ही भेदभाव किया जाता है। आज भी लड़का पैदा होने पर उत्सव व लड़की पैदा होने पर घरों में वज्रपात हो जाता है। समाज के इस भेदभाव पूर्ण रवैये को द्विवेदी जी ने उसी समय ही चिन्हित किया था। समाज के इस निर्मम व्यवहार को उन्होंने इस रूप में चित्रित किया है–

''पैदा जहाँ हुई हम घर में सन्नाटा छा जाता है,
बड़े–बड़े कुलवानों का तो मुँह फीका पड़ जाता है।
कन्या नही बला यह कोई यही चित्त में आता है,
किसी किसी के ऊपर मानो वज्रपात हो जाता है।''[20]

भारतीय समाज में दहेज प्रथा जैसी कुरीति व्याप्त है, जो स्त्री शोषण और उसकी यातना का प्रमुख कारण है, दहेज प्रथा अनमेल विवाह का भी एक प्रमुख कारण है। यह आज भी लाखों स्त्रियों को अपना ग्रास बनाती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी कविता 'ठहरौनी' में दहेज प्रथा की तीखी आलोचना की है–

''लड़के के विवाह में कहिए मोल–तोल क्यों करते हो?
इस काले कलंक को हा हा। क्यों अपने सिर धरते हो?
जिनके नहीं शक्ति देने की क्यों उनका धन हरते हो?
चढ़कर उच्च सुयश–सीढ़ी पर क्यों इस भाँति उतरते हो?''[21]

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विधवा समस्या को अपनी पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से जोरदार तरीके से उठाया। सन् 1856 में ईश्वरचंद विद्यासागर के प्रयासों से पारित विधवा विवाह अधिनियम के बावजूद सामाजिक कट्टरपंथियों ने विधवाओं को विवाह की अनुमति नहीं दी। धर्म और ईश्वर के नाम फैले हुए पाखंड व विधवाओं की समस्या को द्विवेदी जी ने अपनी कविता 'बाल विधवा विलाप' के माध्यम से उठाते हुए लिखते हैं कि–

''गर्भपात कत हा! विधना न कीन्हा?

काहे न जन्मतहि मोह कहैं मृत्यु चीन्हा?

रोगादिहू न अबलौं मम जीव लीन्हा?

रे देव निष्करूण! दुःसह दुःख दीन्हा।।

ऐसे कछू प्रकट, गुप्त कछू, उचारी।

भारी विलाप करि मस्तक भूमि मारी।

शोकार्त बाल विधवा तनताप जारी

हा!हन्त!! हाय!!! कहि मूर्छि परी बिचारी।।''[22]

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युग के महत्वपूर्ण साहित्यकार हैं उन्होंने दो महाकाव्यों 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' की रचना की। हरिऔध जी ने अपने साहित्य में स्त्री के त्याग, ममता, प्रेम, वात्सल्य का बहुत ही उदात्त चित्रण किया है। उनके साहित्य में नवजागरण कालीन प्रवृत्तियां, तार्किकता, नवीन चेतना, समानता, स्वतंत्रता, मानवमुक्ति के मूल्य मिलते हैं। प्रिय प्रवास के माध्यम से उन्होंने कृष्ण कथा को नया स्वरूप प्रदान किया हैं हरिऔध जी ने प्रिय प्रवास में यशोदा के चरित्र में भारतीय माता की एक उदात्त छवि प्रस्तुत की है। यशोदा कृष्ण को बहुत प्रेम करती हैं वह चाहती है कृष्ण हमेशा उनके सामने रहें लेकिन कृष्ण के अनिश्चित काल के लिये मथुरा जाने पर बहुत दुखी होती है। और हर रोज अपने पुत्र कृष्ण की राह जोहती है।

''दिन दिन भर वे आ द्वार पै बैठती थीं।

प्रिय पक्ष लिखते ही वार को थी बिताती।

यदि पथिक दिखता तो यही पूछती थीं।

मत सुत गृह आता कहीं था दिखाया।''[23]

भारतीय साहित्य में स्त्री के प्रमिका, पत्नी, माँ, हर तरह का रूप मिलता है सब रूपों में वह त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में हमारे सामने आती है। जब यशोदा यह जानती हैं कि कृष्ण समाज के उद्धार के लिए मथुरा गए हैं तो वह प्रसन्न होती हैं। लेकिन कृष्ण को अपने से दूर जाने के लिए दुःखी भी होती हैं। लेकिन जब उन्हें देवकी का ध्यान

आता है तो वह चाहती है कि कृष्ण सिर्फ मेरे ही न रहें। वह कहती हैं कि मथुरा रहना चाहें रहें लेकिन एक बार आकर सिर्फ इस दुखियारी माता की आंखों को सुख दे जायें–

''मैं रोती हूँ हृदय अपना कूटती हूँ सदा ही।

हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूँगी।

प्यारे जीवें पुलकित रहें और बने भी उन्हीं के।

धाई नाते बदन दिखला एकदा और देवें।।''[24]

हरिऔध जी ने भवभूति के 'उत्तर राम चरित को आधार बनाकर करूण रस प्रधान महाकाव्य 'वैदेही वनवास' की रचना की। जिसमें सीता को एक आधुनिक स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। हरिऔध जी पर नवजागरण कालीन प्रवृत्तियों का असर था, उन्होंने सीता को एक पढ़ी–लिखी हुई स्त्री के रूप में चित्रित किया है। वे सीता के माध्यम से स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि–

सत्य बात सुत! मैंने बतला दी तुम्हें।

किन्तु क्रियायें तरू की हैं शिक्षा भरी।।

तुम लोगों को यही चाहिए सीख लो।

मिले जहां पर कोई शिक्षा हितकारी।।''[25]

हरिऔध जी जहां एक तरफ स्त्री शिक्षा की वकालत करते हैं वहीं कई जगह सामंती मूल्यों के पक्षधर नजर आते हैं। उनके यहाँ जगह–जगह पुरातनता और आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई देता है। इसलिए वह पतिव्रता, सती आदि की प्रशंसा करते हैं। सती सुलोचना की प्रशंसा सीता के मुख से करवाते हुए लिखा है कि–

''आह! सती सिरधरी प्रमीला का बहु–क्रन्दन।

उसकी बहु व्याकुलता उसका हृदयस्पन्दन।।

मेघनाद शव सहित चिता पर उसका चढ़ना।

पति प्राण का प्रेम पन्थ में आगे बढ़ना।।''[26]

मैथलीशरण गुप्त का स्थान द्विवेदी युग के साहित्यकारों में प्रमुख है। महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की थी। सन् 1954 में उन्हें भारत सरकार ने पद्म भूषण से सम्मानित किया। मैथिली शरण गुप्त के काव्य में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना प्रमुख रूप से मुखरित हुई है। 'जयद्रथ वध', 'किसान', 'पंचवटी', 'भारत–भारती', 'यशोधरा', 'विष्णु प्रिया', 'साकेत' आदि कुतियां उनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ हैं। गुप्त जी आर्य समाजी थे, समाजसुधार स्त्री शिक्षा व स्त्री उत्थान जैसे विषय उनकी रचनाओं के केन्द्रीय विषय है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

के लेख 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से प्रभावित होकर गुप्त जी ने 'साकेत' की रचना की। उन्होने उर्मिला को त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में उकेरा है। उर्मिल के त्याग और असहाय स्थिति को दशरथ के इस उद्‌गार से समझा जा सकता है–

''सीता भी नाता तोड़ गई,

इस वृद्ध ससुर को छोड़ गई!

उर्मिला बहु की बड़ी बहन।

किस भाँति करू मैं शोक सहन?

उर्मिला कहाँ है, हाय बहू!

तू रघुकुल की असहाय बहू।''[27]

गुप्त जी 'भारत भारती' में कई बार सनातनी मूल्यों की प्रतिष्ठा करते नजर आते हैं। इसलिए कई आलोचकों ने उन्हें पुनरुत्थानवादी कहा है। सनातनी मूल्यों के प्रभाव में वे नवजागरणकालीन स्त्रियों को अनुसूया, सावित्री, कुन्ती, दमयन्ती आदि की तरह पतिव्रता का उपदेश देने लगते हैं किन्तु जहां वे सनातनी परंपराओं और विचारों से मुक्त हैं वहाँ स्त्री उत्थान, स्त्री शिक्षा और समाज में फैली कुरीतियों को नष्ट करने की वकालत करते हैं गुप्त जी का मानना है कि यदि स्त्रियों को शिक्षा अवसर दिया जाय तो वे अपनी प्रतिभा साबित करेंगी।

''क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता होना नारियाँ?

रण–रंग, राज्य, सुरुधर्म–रक्षा कर चुकी सुकुमारियाँ।

लक्ष्मी, अहल्या, बायजाबाई, भवानी, पद्‌मिनी–

ऐसी अनेकों देवियाँ हैं आज जा सकती गिनी।।''[28]

गुप्त जी की मान्यता है कि अगर समान अवसर उपलब्ध हो तो स्त्रियां पुरुषों से पीछे नहीं रहेंगी।

''सोचो, नरों से नारियाँ किस बात में हैं कम हुई।

मध्यस्थ वे शास्त्रार्थ में हें भारती से सम हुई?

हैं धन्य थेरी तुल्य गाथा– कृतियाँ वे सर्वथा,

कवि हो चुकी है विज्जका, विजया, मधुरवाणी यथा।।''

इस तरह हम देखते हैं कि नवजागरण युगीन हिंदी साहित्य स्त्री समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरकर सामने आयी हैं। नवजागरण काल एक तरह से विचारों का संक्रमण काल है। जहाँ आधुनिक और पुरातन विचार एक साथ

उपस्थित हैं इसलिए ज्यादातर साहित्यकारों का स्वर परिवर्तनगामी न होकर व्यवस्था में सुधारवादी दिखाई पड़ता है। कुछेक स्त्री स्वर जरूर प्रमुख रूप से परिवर्तनगामी दृष्टि लिए हुए दिखाई देते हैं लेकिन उन्हें उस तरह साहित्य में स्थान नहीं मिला जैसा कि उन्हें मिलना चाहिए।

संदर्भ सूचीः–

1. नवजागरण और हिन्दी साहित्य, कुँवर पाल सिंह, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, पृ. 32
2. श्री ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, पृ. 195
3. सं. हेमन्त शर्मा, भारतेन्दु समग्र, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, वाराणसी, षष्ठम् संस्करण–जनवरी 2009, पृ. 996
4. वही, पृ. 984–985
5. वही, पृ. 462
6. वही, पृ. 478–479
7. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास–परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 91–92
8. सं. समीर कुमार पाठक, बालकृष्ण भट्ट रचनावली (भाग–2), अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 193
9. डॉ. समीर कुमार पाठक, बालकृष्ण भट्ट, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 73
10. सं. समीर कुमार पाठक, बालकृष्ण भट्ट रचनावली (भाग–2), अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 239
11. वही, पृ. 212
12. सं. समीर कुमार पाठक, बालकृष्ण भट्ट रचनावली (भाग–4), अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 486
13. सं. डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, प्रताप नारायण मिश्र रचनावली (भाग–3) भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2001, पृ. 22
14. कुँवरपाल सिंह, नवजागरण और हिन्दी साहितय, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 116
15. सं. डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, प्रताप नारायण मिश्र रचनावली (भाग–3) भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2001, पृ. 79
16. सं. डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, प्रताप नारायण मिश्र रचनावली (भाग–1) भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2001, पृ. 22
17. सं. भारत यायावर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रचनावली (भाग–13), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 184

18. सं. भारत यायावर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रचनावली (भाग–7), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 176
19. सं. भारत यायावर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रचनावली (भाग–13), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 232
20. वही, पृ. 230
21. वही, पृ. 240
22. वही, पृ. 65–70
23. सं. सदानन्द शाही, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' रचनावली (खण्ड–1) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 96
24. वही, पृ. 157
25. वही, पृ. 482
26. वही, पृ. 305
27. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, साहित्य सदन, चिरगाँव (झांसी), पृ. 86
28. भारत भारती, मैथलीशरण गुप्त, साहितय सदन, चिरगाँव (झाँसी), पृ. 147
29. वही, पृ. 147